एम॰एस॰ कॉलेज [illegible]
विभाग - हिंदी
विषय - नाटक - 'चन्द्रगुप्त'
पाठ - 'चन्द्रगुप्त' नाटक का कथानक
शिक्षण माध्यम - पाठ्य रूप
समय - 11.00 to 12.00
शिक्षक - डॉ. रमेश शर्मा

पाठ - चन्द्रगुप्त नाटक का कथानक

छात्र-छात्राओं !

कल के वर्ग में 'चन्द्रगुप्त' के कथानक-विस्तार पर हमलोग विचार कर रहे थे। इस प्रसंग में नाटककार के जीवन काल में ही इस नाटक पर अभिनेय नहीं होने का आरोप लगा था। ~~प्रसाद जी के~~ डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने प्रसाद के नाटकों में दोष को रेखांकित करते हुए लिखा है — " प्रसाद के नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से अनेक दोष विद्यमान हैं। एक तो उनके नाटक बहुत कठिन हैं। लम्बे-लम्बे संवाद और गीतों की भरमार है। दार्शनिक तत्त्वों की अधिकता के कारण वे सर्वसाधारण की समझ के बाहर हैं। इसके अतिरिक्त उनकी शैली में भी संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोगाधिक्य के कारण दुर्बोधता आ गई है। वस्तुतः उनके नाटक रंगमंच पर देखे जाने की अपेक्षा घर में बैठकर आराम से पढ़े जाने की वस्तु अधिक है। सर्वसाधारण के मनोरंजन की अपेक्षा वे विद्वानों के चिंतन मनन की सामग्री अधिक प्रस्तुत करते हैं।" (साहित्यिक निबन्ध,-पृष्ठ-742) इसी क्रम में आगे लिखते हैं — " वे अभिनीत नहीं हो सकें तो न सही— सामान्य गद्य-पद्यमय रचना के रूप में भी वे हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' में नाटककार प्रसाद के संबंध में लिखते हैं — " पारसी ढंग पर लिखे गए नाटकों का उस समय बोलबाला दिखाई पड़ता है, जब 'प्रसाद' नाटककार के रूप में उपस्थित होते हैं। सब प्रकार की भारतीय परिपाटी का अनुसरण करने पर भी 'प्रसाद' इस नवीनता को स्वीकार कर ही लेते हैं; क्योंकि भावुक कवि-हृदय चंचलता है और इसको स्वीकार करने में एक प्रकार की संतुष्टि

का अनुभव करता है। रूपक-रचना के बीच में जहाँ कहीं अवसर मिलता है वहाँ अपनी भावुकता से प्रेरित कविताओं के प्रवेश का नए सरल द्वार उनके लिए खुल पड़ा और 'प्रसाद' अतिरेक से न बच सके।" (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन - पृ. - 268)

प्रस्तुत 'चन्द्रगुप्त' नाटक के संबंध में आगे शर्मा जी लिखते हैं —

"चन्द्रगुप्त में कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका और सुवासिनी सभी गाती हैं और इतना अधिक गाती हैं कि संगीत भी अप्रिय हो जाता है। चतुर्थ अंक के चतुर्थ दृश्य में मालविका तीन बार गाती है। इन तीनों गानों में चालीस मिनट से कम नहीं लगेंगे। रंगमंच के विचार को छोड़कर भी यह स्थिति बुद्धि-ग्राह्य नहीं - कला कौशल ~~कौशल~~ के विचार की तो बात दूर है।" (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन - पृ. - 269)

स्पष्ट है जैसा कि प्रारम्भ में ही संकेत किया गया था प्रसाद जी की काव्य प्रियता उनके कथानक को बोझिल बना देती है। भद्दापन भी उभरता है जब नेपथ्य से भी गाने गवा दिये जाते हैं। इस पर बाद में विचार करेंगे। एक रोचक प्रसंग यह है कि शर्मा जी अपनी स्मृति के आधार पर ही लिखते हैं कि उनसे स्वयं नाटककार प्रसाद जी ने ही ~~मह~~ कई बार कहा है — 'मेरी रचनाएँ तुलसीदत्त शैदा या आगा हश्र की व्यावसायिक रचनाओं के साथ नहीं नापी-तौली जाना चाहिए। मैंने उन कंपनियों के लिए नाटक नहीं लिखे हैं जो चार चलते अभिनेताओं को एकत्र कर, कुछ पैसा जुटाकर, चार पर्दे मँगनी माँग लेती हैं और दुअन्नी-अठन्नी के टिकट पर इक्केवाले, खोंचेवाले और दुकानदारों को बटोरकर जगह-जगह प्रहसन करती फिरती हैं। 'उत्तररामचरित', 'शकुन्तला' और 'मुद्राराक्षस' नाटक कभी न ऐसे अभिनेताओं द्वारा अभिनीत हो सकते और न जनसाधारण में रसोद्रेक के कारण बन सकेंगे। उनकी काव्य-प्रधान शैली कुछ विशेषता चाहती है। यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचि-सम्पन्न सामाजिक हों और पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाय तो ये नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।" (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ 276)

नाटककार प्रसाद जी के उपर्युक्त निवेदन या कहें अपने नाटकों के ऊपर लगाये गये आरोपों के खंडन में जिस विशिष्टता, योग्यता वाले अभिनेताओं की बात की गई है, को ध्यान में रखकर (मैं अपनी स्मृति से यह बात लिख रहा हूँ) गुरुदेव, नाटककार सिद्धनाथ कुमार कहा करते थे — भारत सरकार ने अपूर्व धन खर्च करके दिल्ली में इस 'चन्द्रगुप्त' नाटक का मंचन कराया था। निर्देशक थे अल्काजी। फिल्मांकन वाली पद्धति से दृश्यबंध रूप में ही संजोकर नाटक प्रदर्शित किया गया था यह सत्य है। कहते हैं नाटक का मंचन पूरी रात में समाप्त हुआ था और अंत में दर्शकों की संख्या नगण्य रह गयी थी। कुशल अभिनेता और आधुनिक रंगमंच के द्वारा नाटक तो अभिनीत हो गया, पर अपेक्षित प्रभावोत्पादकता का सवाल धरा का धरा रह गया। जैसा कि नाटक पर विचार करते हुए पहले वर्ग में ही यह बात कही गई थी — नाटक थोड़े से प्रबुद्ध वर्ग के लिए नहीं लिखा जाता। इसके सामने तो सर्वसाधारण जन-मानस होता है उसे ही अपनी प्रभावोत्पादकता द्वारा हँसाना या रुलाना होता है। यह कोई अचरज वाली बात नहीं है। प्रसाद जी से थोड़ा ही पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक अपनी रंगमंचीय क्षमता और उससे उत्पन्न अपनी प्रभावोत्पादकता के लिए जन सामान्य में चर्चित रही है। गाँव-गाँव में यह नाटक खेला जाता था — कहना न होगा कि अपने पति राजा हरिश्चन्द्र के द्वारा अपने पुत्र के शव-दाह के लिए कफन माँगे जाने पर और अधफटी साड़ी से किसी तरह अपनी लज्जा को ढके शैव्या जब साड़ी का शेष भाग कर के रूप में देने के लिए फाड़ती है — तब दर्शक-दीर्घा में बैठे अपार जनसमूह की आँखें एकसाथ गीली न होती हों। यह है नाटक की प्रभावोत्पादकता जिसके आधार पर नाटक को 'पंचम वेद' कहा गया है। शेष अगली कक्षा में।